स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत-२५३८ अंक-१७१, वर्ष-१५, दिसम्बर-२०११

दि.१५-६-१९६६, श्री योगसार गाथा - २२ पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन - ९

२२। अब खुद ही आया। आगे (२९ गाथा में) जिन सो ही परमात्मा (कहकर) ऐसा थोड़ा जोड़कर कहा था। अब मैं ही परमात्मा हूँ। ऐसा अनुभव कर, मैं ही परमात्मा हूँ। वीतराग सर्वज्ञदेव की ध्वनि में त्रिलोकनाथ परमात्मा सौ इन्द्रों की उपस्थिति के समवसरण में, लाखों, करोड़ों देवों की हाज़री में भगवान की वाणी में आया, तू परमात्मा है ऐसा नक्की कर, तू परमात्मा हो ऐसा नक्की कर। ओ..हो..हो..! भगवान ! परन्तु आप भगवान हैं इतना तो नक्की करने दो। हम परमात्मा है ऐसा तुझे नक्की कब होगा ? कि, तू परमात्मा है ऐसा अनुभव तुझे होगा तब ये परमात्मा हैं ऐसा व्यवहार तेरा नक्की होगा। निश्चय नक्की हुए बिना व्यवहार नक्की नहीं होगा। आहाहा..! देखो ! बात बदलते हैं।

जो परमप्पा सो जि हउं जो हउं सो परमप्पु।
हउ जाणेविणु जोइआ अण्णु म करहु वियप्पु।।२२।।

आहाहा..! देखो यह। कहते हैं कि भाई ! हे धर्मी जीव ! '**जो परमात्मा है सो ही मैं हूँ।**' परमात्मा को विकल्प नहीं होता, परमात्मा बोलते नहीं, परमात्मा बुलाने में आते नहीं, वैसा ही मैं आत्मा परमात्मा हूँ ऐसा अनुभव दृष्टि में ले। आहाहा..! यहाँ तो विशेष कहते हैं कि '**अण्णु म करहुं वियप्पु**' दूसरे जितने भी विकल्प करे, दूसरों को समझाने का, ये शास्त्रों की रचना का, इससे यदि तू अपना बड़प्पन मानेगा (तो)। वह वस्तु में नहीं है। समझ में आया ? अब शास्त्र-बास्त्र की चर्चा छोड़कर यह करने में लग जा, ऐसा कहते हैं। कब तक तुझे शास्त्रों की चर्चा में उलझना है ? इस शास्त्र में ऐसा कहा है, उसमें ऐसा कहा है। वह तो सारी विकल्प की ज्वाला है। आहाहा..!

'**जो परमप्पा सो जि हउं**' मैं हूँ, ऐसे। '**सो जि हउं**' वह परमात्मा सो ही मैं हूँ। ऐसे भी नहीं कि वीतराग परमात्मा जैसा तू जान यहाँ तो कहते हैं, मैं ही परमात्मा हूँ। पहले उसके द्वारा दर्शाया था। यहाँ तो परमात्मा पूर्णानंद स्वरूप एक सेकन्ड के असंख्य वे भाग में अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, पिंडलो भगवान सो मैं ही हूँ। ऐसा अंतर में, निश्चय में, अनुभव में ला और वैसा अनुभव करना वह तेरे लाभ में जाता है। बाकी जितने भी विकल्प करने और वाणी आदि सबकुछ, शास्त्र की चर्चाएँ, वादविवाद और शास्त्र-चर्चा करना सबकुछ तेरे लाभ में नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। है ? समझ में आया ?

उसने कहा है '**व्यवहार की कल्पनाओं को छोड़कर केवल एक शुद्ध निश्चयनय से अपने आत्मा को पहचान.. शास्त्रों का ज्ञान संकेतमात्र है। शास्त्र के ज्ञान में ही जो अटका रहेगा, उसे अपने आत्मा का दर्शन नहीं होगा।**' आहाहा..!

मुमुक्षु :- कल्पनाएँ की सब व्यवहार की।

पूज्य गुरुदेवश्री :- कल्पना ही है न लेकिन व्यवहार की (तो कहते हैं), नहीं, कल्पना नहीं है। अब सुन तो सही।

मुमुक्षु :- इससे तो संवर-निर्जरा होती है, साहब !

पूज्य गुरुदेवश्री :- धूल होती है। भगवान चिदानन्द विराजते हैं और तू व्यवहार-रंकता से (लाभ मानता है)। परमेश्वर हो गया रंक। भिखारी परमेश्वर हुआ। परमेश्वर परमेश्वर होगा या भिखारी परमेश्वर होता होगा ? व्यवहार का राग भिखारी है, रंक है। नाश होने लायक तुझे परमेश्वर पद को प्राप्त करायेगा ? समझ में आया ? शास्त्र की चर्चाएँ और कल्पनाएँ, ऐसी कल्पनाएँ तुझे परमेश्वरपद की प्राप्ति करायेगी क्या ? ३३-३३ सागर तक सर्वार्थसिद्धि के देव शास्त्रों की (चर्चा) करते हैं। छोड़ दे, यह कल्पना छूटने पर, स्थिर होने पर केवलज्ञान है। आहाहा..! समझ में आया ?

यह तो वीरों का मार्ग है, भाई ! आहाहा..! `...' वह आचार्य का छोटा वचन पहले कईबार लेते थे। वे सब आपने लिखे थे। (संवत्) १९८२ की साल में पता है ? `वढवाण' `वीरवाणी... वीरवाणी' आती थी न ? `वीरवाणी' (संवत्) १९८२ की साल में चातुर्मास था। १९८२ में वे छोटे-छोटे टुकड़े लिखते थे। `...' भगवान ऐसा फरमाते हैं कि, अरे.. आत्मा ! तेरा मार्ग तो अफरगामी मार्ग, भाई ! जिस रास्ते चढ़ा वहाँ से पीछे नहीं हटना पड़े ऐसा तेरा मार्ग है। आचार्य के वचन हैं। `...' में `...' परन्तु महा पुरुषार्थ से आचरण में रख पाये ऐसा मार्ग है। यह कोई रेंगीफेंगी, नपुंसकों का मार्ग नहीं है। जिस मार्ग पर तू चढ़ा वह अफर मार्ग है। निज अव्यक्तगामी पीछे नहीं हटे ऐसा तेरा रास्ता है। केवलज्ञान लेकर ही रहे ऐसा तेरा मार्ग है। ए भाई ! `वीरवाणी' में लिखते थे, फिर पीछे छपवाते थे। (संवत) १९८२-८३ में उन दिनों में ऐसा कहते थे, हँ! उन दिनों में भी। सभा पूरी भरी हो, लगे कि ये क्या कहते हैं ? आचारंग का टुकड़ा है। `णमो लोए सव्वसाहूणं' २५-५० ऐसे टुकड़े हैं। `णमो लोए सव्वसाहूणं' भगवान कहते हैं, हे वीर ! दुनिया के मार्ग से मेरे वीतरागमार्ग की तुलना मत करना, ऐसे निरूपित मत करना। दुनिया क्या मानती है ? किसी की क्या मान्यता है ? बड़े पण्डित लोग क्या मानते हैं ? अरे ! छोड़ दे ऐसी दरकार। वे सब होली जलाते हैं। णमो लोए सव्व साहूणं हमारा वीतराग मार्ग पूर्णानन्द के पंथ पर विचरण करनेवाले, लोक के साथ इसके मार्ग की तुलना नहीं करते। लोग के साथ कहीं भी मेल नहीं खाता, बिलकुल मेल नहीं खाता। लोग तो मूढ़ हैं, चाहे कितनी तादात् में क्यो न हों इससे क्या हो गया ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा मैं पूर्णानंद का नाथ शुद्ध चैतन्य महा परमात्मा अंतर स्वरूप से पूर्ण भरा हुआ परमात्मा ही मैं हूँ। अरे..! `जो हउं सो परमप्पु' `**और जो मैं हूँ सो ही परमात्मा है...**' लीजिये। `**जो परमात्मा है वही मैं हूँ और जो मैं सो ही परमात्मा है...**' आमने-सामने ले लिया। मैं सो परमात्मा और परमात्मा सो मैं। ये कितने पुरुषार्थ होने पर सम्मत हो ? भाई ! आहाहा..! भाईसाहब ! हमें तो बीड़ी के बगैर चले नहीं, तम्बाकु के बिना चले नहीं, एक थोड़ी आबरु में धक्का पहुँचे तो झटका खा जाये, ऐसे को आप परमात्मा कहते हो ? अरे..! छोड़ न ! वे सब कब तेरे स्वरूप में थे ? भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, पूर्णानंद का नाथ परमेश्वर जो कि पर्याय में विकल्प की आड़ में भगवान छिपा है पूरा परमेश्वर, तुने तिरोभूत कर दिया है। विकल्प की आड़ में गौण कर दिया। निर्विकल्पनाथ भगवान निर्विकल्प अभेद स्वरूप है, वह निर्विकल्प दशा से ही प्राप्त हो, वैसा है। समझ में आया ? आहाहा..!

जो परमात्मा है सो ही मैं हूँ। `**इउ जाणेविण**' `**ऐसा जानकर**' `**अण्णु वियप्प म करहु**' ऐसा करके (कहते हैं), दूसरा व्यवहार, शास्त्र पठन के विकल्प, पंचमहाव्रत के विकल्प नौं तत्त्व के भेद के विकल्प, महाव्रत के विकल्प, नौं तत्त्व के भेद के विकल्प ये सब अब मत कर, मत कर ! करना तो यह है।

मुमुक्षु :- स्वयं महाव्रत का पालन करते हैं और महाव्रत के विकल्प छोड़ने का कहते हैं ?

उत्तर :- छोड़, छोड़, छोड़ ऐसा कहते हैं, देखो ! यह स्वयं कहते हैं।

मुमुक्षु :- स्वयं कहते हैं ?

उत्तर :- ये क्या कहते हैं ? छोड़। छोड़ने लायक है उसे छोड़, आदर करने लायक है वहाँ एकाग्र हो। आहाहा..! स्वयं वस्तु के भीतर अनन्त आनन्द व अनन्त गुण से भरा पूरा तत्त्व केवल परमात्मा का पिण्ड है स्वयं। परम स्वरूप का पिण्ड भगवान आत्मा है, उसका आश्रय कर। वही मैं। विकल्प छोड़ दे। शास्त्र का पाठ पढ़ने का विकल्प छोड़ दे। दूसरे को समझाने से मुझे लाभ होगा, ऐसा तो इसकी मान्यता में हो ही नहीं सकता। परन्तु दूसरे

को समझाने का विकल्प भी मुझे लाभदायी नहीं है। आहाहा..! ऐसा वीतरागमार्ग। आहाहा..! लाखों लोग समझ ले, आहाहा..! किन्तु इससे तुझे क्या ? तू कहाँ विकल्प और वाणी में हो ? जहाँ तू है वहाँ विकल्प और वाणी नहीं है, वह तो परमात्मस्वरूप चिदानंद अखण्ड ज्ञाता-दृष्टा नहीं है। वहाँ ऐसे विकल्प, वाणी नहीं है। अब तुझे क्या वहाँ से लाभ लेना है ? समझ में आया ? विकल्प और वाणी है वहाँ अजीव तत्त्व और बंध तत्त्व है। बंध तत्त्व में अबंध भगवान विराजमान है क्या ? आहाहा..!

अबंधस्वरूपी प्रभु मोक्षस्वरूपी आत्मा। वस्तु नाम अबंधस्वरूप। वस्तु माने मोक्षस्वरूप। वस्तु नाम पूर्ण आनंद के प्रगट प्रगट शक्तिरूप पूरा तत्त्व। ऐसे परमात्मा सो मैं और मैं सो ही परमात्मा, ऐसे जानकर हे आत्मा ! अन्य विकल्पों को छोड़, भाई ! आहाहा..!

कोई कहता है, नहीं। अभी शुभ विकल्प करेंगे तो क्षायिक समकित होगा। अरे..! भयंकर त्रास गुजारते हो तुम। परमात्मा को लूटा दिया तूने, समझ में आया ? बापू ! इसका फल निगोद तुझे भारी पड़ जायेगा, भाई ! ये दुनिया तो बेचारी अभी स्वीकार कर लेगी कि, हाँ। हमें तो कितना (मिलता है)! कैसा मार्ग कहते हैं। आहाहा..! शुभ में तो धर्म होगा। धूल में थोड़ा भी (नहीं होगा)। शुभ में भगवान पड़ा है ? शुभ से पार आत्मा है। ऐसे आत्मा का भीतर में श्रद्धा ज्ञान किये बिना इससे मुझे ऐसा मिलेगा, मूढ़ पामर हो जायेगा, निगोद में चला जायेगा। हीन होते होते होते मैं आत्मा हूँ या नहीं यह श्रद्धा भी छूट जायेगी। आत्मा हूँ ऐसा व्यवहार, भीतर में अंशतः श्रद्धा जो है वह भी छूट जायेगी। आहाहा..!

`आळ' (झूठा आरोप) न दे, आळ न दे, भगवानआत्मा को आळ न दे। आळ देगा तो आळ लग जायेगा तेरे पर। आहाहा..! ऐसा एक शब्द आता था, नहीं ? जो दूसरे को आळ देता है वह अपने आपको आळ लगाता है। ऐसा शब्द है। उन दिनों में व्याख्या करते थे। ये सब लिखावट आपके `वीरवाणी' में आयी है। भाई साथ में थे ? अच्छा। वहाँ थे तो सही, परन्तु ये छपवाने में उनका साथ था ? कभी-कभी थे।

जो कोई अपनी आत्मसत्ता ऐसी परमात्म सत्ता को `आळ' देता है कि, मैं ऐसा नहीं, मैं तो रागयुक्त और अल्पज्ञ व नीचतायुक्त ऐसे गाली देनेवाले। मैं आत्मा नहीं - ऐसी खुद की नास्ति कर देगा। जगत में मैं आत्मा ही नहीं हूँ। मैं नहीं हूँ मैं नहीं हूँ। मैं कहाँ ऐसा हूँ ? समझ में आया ? अंधा हो जायेगा। मैं आत्मा ही, परमात्मा ही हूँ। अल्पज्ञ व राग नहीं, मैं परमात्मा ही हूँ। इसके अलावा सारे विकल्प छोड़ दे। ऐसे दूसरे विकल्पों से लाभ होगा, कुछ लाभ होगा (ऐसा छोड़ दे)। हैं ? तीर्थंकर गोत्र का बंध होगा और तीर्थंकर गोत्र का बंध होनेवाले की अल्प भव में मुक्ति होगी, लीजिये। `श्रीमद्' कहते हैं, एक जीव को भी अगर अच्छीतरह समझाये तो तीर्थंकर गोत्र का बंध हो। परन्तु आखिरकार बंध ही न ? ऐसा कहते हैं। इसमें छूटने का कहाँ आया ? अन्य विकल्प मत कर। यहाँ तो तीर्थंकर गोत्र बांधनेका विकल्प भी छोड़ दे। समझ में आया ? भगवान आत्मा परमात्मस्वरूप है न, प्रभु ! अरे..! तेरे खजाने कहाँ कोई कमी है कि तुझे दूसरे का शरण लेना पड़ रहा है ? आहाहा..!

प्रश्न :-- पाँचवे आरे में ऐसा है ?

उत्तर :- पाँचवें आरे में कहाँ, आरे में आत्मा है ही नहीं। आरे में आत्मा नहीं, आत्मा में आरा नहीं है। ये दो भाई `वीरवाणी' लिखते थे। समझ में आया ? ये सिद्धांत चल रहे हैं न सीधे स्पष्टरूप से। आहाहा..!

`**अण्णु म करहु वियजु**' भगवान ! आहाहा..! कौन कहता है ? सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। यहाँ मुनि कहते हैं। समझ में आया ? मुनिराज दिगम्बर संत `योगीन्द्रदेव' जंगलवासी। जिन्हें एक कपड़े का धागा भी न था। जंगल में रहते थे। एक कपड़े का धागा भी (न था), इतना ही नहीं। एक विकल्प के लगाव का धागा भी मेरे में नहीं है, ऐसे थे वे। जिस भाव से महाव्रत के विकल्प उठे वह मेरे में नहीं है ऐसे थे वे। समझ में आया ? आहाहा..! ऐसा कहते हैं, `**इउ जाणेदिणुं जोईआ**' इस स्वरूप में एकाग्रता करनेवाला जीव। ये एकाग्रता के अलावा विकल्प जो हैं, चाहे जैसा हो, पंचमहाव्रत का हो, व्यवहार समिति, गुप्ति का हो। व्यवहार में पर को समझाने का हो, शास्त्र पढ़ने का हो। अब पढ़-पढ़कर कहाँ तक पढ़ते रहना है तुझे ? ऐसा कहते हैं। भाई ! पढ़-पढ़कर क्या पढ़ना है ? कि यह (भगवान) को पिछानना है अंदर में ?

यहाँ तो कहते हैं कि, यह पठन से प्राप्त ज्ञान से पकड़ में आये ऐसा नहीं है। ऐसा है वह। भाई ! शास्त्रज्ञान से पकड़ में आये ऐसा नहीं है। शास्त्र और शास्त्र प्रत्ययी

ज्ञान परावलंबी ज्ञान है। छोड़ इसकी महिमा, इसके बिना आत्मा का पता नहीं लगेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा..! यहाँ तो विकल्प की बात की है परन्तु वह विकल्प जो है, भेद है, पर तरफ का ज्ञान वह आत्मा के स्वभाव का ज्ञान नहीं है। समझ में आया ? आहाहा..! उछल पड़े, नपुंसक हो तो नहीं होगा। नपुंसक को शुरातन नहीं चढ़ता। समझ में आया ?

माता देवकी, `श्रीकृष्ण' वहाँ बड़े हुए थे न ? किसी दूसरो के वहाँ बड़े हुए थे न ? ग्वाला के घर। जैसे माता को देखकर प्रेम आया कि माता के स्तन में दूध आया, स्वतः दूध आया। जन्म जो दिया है न उसने ? उसको लगा यह क्या ? ग्वाला के घर जन्म हुआ लेकिन यह मेरी माता लगती है। उसको दूध क्यों आया ? यह मेरी जनेता लगती है। ग्वाला के घर तो मुझे रख दिया लगता है। वासुदेव थे न। महाविचिक्षण बुद्धिशाली थे। `देवकी' को दूध क्यों आया ? यह मेरी माता लगती है। मैं भी अपने आप को देखूं तो बल और शरीर की सारी स्थिति ऐसी लग रही है। मैं भले ही ग्वाला के यहाँ बड़ा हुआ हूँ किन्तु मैं उस जातिका नहीं लगता। आहाहा..! समझ में आया ? आहाहा..! यूँ नज़र करते ही राणी को कहा, राणी का देदार भी अलग ही था, पुण्यशाली है न ! देवकी तो पुण्यशाली। आहा..! इस देदार की कूख से जन्मा हूँ ऐसा लगता है। ये नहीं, ये नहीं इसीलिये उसके स्तन में दूध आया है। समझ में आया ? आहाहा..! इसप्रकार आत्मा उस विकल्प की जाति का नहीं है। निर्विकल्प चैतन्य भगवान आत्मा निर्विकल्प दृष्टि से पकड़ में आये ऐसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

`**अण्णु म करहु विरजु**' पंचमहाव्रत के विकल्प भी छोड़ दे। भगवान तो ऐसा कहते हैं कि, हमें सुनना छोड़ दे। प्रभु आप ये क्या कहते हो ? भगवान फरमाते हैं कि, हमारे सामने देखना छोड़ दे। हमारे सामने देखने से तेरा भगवान का पता नहीं चलेगा। आहाहा..! दिव्यध्वनि कहती है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी में ऐसा आया, त्रिलोकनाथ समवसरण में फरमाते थे, अरे ! आत्मा ! तू परमात्मा है, अंतर की चीज़ में परमात्मा नहीं होता तो पर्याय के काल में परमात्मा कहाँ से आता ? क्या बाहर से आये ऐसा है ? भगवान परमात्मा का स्वरूप ही तेरा है। गर्भ हो बंदर का और जन्म हो बालक का, ऐसा कभी बन सकता है क्या ? गर्भ भी मनुष्य के बच्चे जैसा होता है जो कि एनलार्ज होकर बाहर आता है। समझ में आया ? ऐसे भगवान आत्मा एक सेकन्ड के असंख्य वे भाग में पूर्ण परमात्मा का रूप ही आत्मा का है। आहाहा..! वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनंत आनंद, अनंत वीर्य, अनंत स्वच्छता, प्रभुता, वीतरागता, निर्ग्रंथता ऐसे-ऐसे गुणों से भरा भगवान परिपूर्ण प्रभु आत्मा तू है। तुझे तू देख और आत्मा जान व मान, मेरे सामने देखना छोड़ दे ऐसा भगवान कहते हैं। टगटगी लगाना छोड़ दे कि, मेरे से कुछ मिलेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा..! समझ में आया ? वीतराग की वाणी में ऐसा होता है, पामर की वाणी में ऐसा नहीं आता। भगवान कुछ नहीं लेना है आपको ? कुछ तो फल लीजिये। ये उपदेश दे दिया। शास्त्र के फल न आये तो उसकी पर्याय में, मुझे क्या ? मैं तो केवलज्ञानी हूँ। मुझे तो कुछ लेना नहीं है और अधूरा पूरा करना नहीं है उसे लेकर। साधक जीव को अधूरा पूर्ण करना हो तो कुछ विकल्प और पर को समझाने से होता होगा। अधूरा पूर्ण (करना हो तो) पूर्ण परमात्मा को देखने में एकाकार होगा तो अपूर्ण है वह पूर्ण हो जायेगा। समझ में आया ? आहाहा..!

यहाँ तो कहते हैं शब्दों से समझ में नहीं आता। है ? मन और विचार में नहीं आता। भगवान मन में विचार में आये वह ? परमात्मा अखण्ड आनंद का रसकंद है। अनाकुल शांतरस का स्वयं पिण्ड, पिण्ड पूरा पिण्ड पड़ा है। खोल दृष्टि में से, कहते हैं। आहाहा..! ऐसा भगवान मन में विचार में नहीं आता। शब्द तो क्रम-क्रम से बताते हैं इसमें आत्मा कहाँ आया ? कहते हैं। सब शास्त्रों के चर्चा को छोड़। गुणस्थान मार्गणास्थान के विचार बंद कर। लीजिये। ऐसा बहुत कुछ लंबा-चौड़ा उन्होंने लिखा है। समझ में आया ? फल का दाखिला दिया है। ठीक है, कहीये ये दो गाथा पूर्ण हुई।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (दिसम्बर-२०११) का शुल्क श्री सुमतिलाल शिवलाल शाह परिवार, (यु.एस.ए.) (शिकागो) के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित पत्र

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः भावनगर, १७-५-६२

धर्मबंधु आत्मप्रेमी भाईश्री... मुंबई,

वि. आपका पत्र मिला। पढ़कर खुशी हुई। अवकाश लेकर कभी-कभी धर्मवार्तारूप पत्र लिखते रहना। मुंबईसे लौटनेके बाद बुखार चालु रहनेके कारण स्क्रीनींग करवाया, जिसमें बायीं और प्लुरसी होनेका निदान हुआ। जिसके लिये (दवाईका) कोर्स चल रहा है। फिलहाल ठीक है। अभी पन्द्रह दिन तक इन्जेक्शन और आराम लेना है। जिसके कारण बाह्य प्रवृत्तिसे मुक्त हूँ। शरीरकी क्रिया शरीरमें होती रहती है। उसमें इस आत्माको जितना राग है, उतनी आकुलता है। अहो! ऐसे समयमें वीतरागी मुनिराज कि जिनको पांचों इन्द्रियोंकी ओरका उपयोग जैसे कि खत्म हो गया हो, उस तरह आत्मरमणतामें झूलते हुए भगवान स्मरण करने योग्य है। अरे! इससे भी अधिक त्रिकाल परिपूर्ण एकरूप ज्ञानानंद भगवान आत्माका अवलंबन मात्र शरणभूत है, श्रेयभूत है।

अरे भाई! चैतन्यका स्फुरण ही आत्मार्थीका हृदय है। इसलिये आत्मार्थी को दूसरोंके प्रति विशेष राग कम रहता है। क्या लिखूँ ? `मैं एक शुद्ध ज्ञान दर्शनमय परिपूर्ण आत्मा हूँ' इसके सिवा मेरे लिये मुझे दूसरा ख्याल कैसे हो सकता है ? कैसे उचित है ? आत्मिक मंथन-घोलनका केन्द्र और सर्व वीतरागी भगवंतों का यही फरमान है। पूज्य गुरुदेवश्रीने कहा था कि, देखो अनादिसे ज्ञान और राग एकसाथ परिणमनमें चलता हुआ परिणमित हो रहा है। इसमें निज-भान नहीं होनेके कारण खुद की रागरूप कल्पना करता हुआ और ज्ञानरूप जो कि अपना रूप है, उसे चूककर मिथ्यादृष्टिपनेमें रहकर, जीव परिभ्रमण करता है। साक्षात् ज्ञानी और वह भी भावि (निकटके ही) तीर्थंकर निष्कारण करुणासे जब इस प्रकार आत्मा बताते हैं, ऐसा योग भी क्वचित् महापुण्ययोगसे बनता है। पूज्य गुरुदेवने तो आत्मा हथेलीमें दिखाया है। उनकी वीतरागतासूचक निस्पृहता देखकर भक्तिभावसे उनके चरणमें हृदय झुक जाता है। फिलहाल तो शारीरिक आरामकी जरूरत होनेके कारण, डॉक्टरकी सूचना अनुसार घरमें ही रहनेका होनेसे, सोनगढ़ पूज्य गुरुदेवश्रीके दर्शनका योग नहीं है- श्री..... जय जिनेन्द्रके साथ यादी (नमस्कार) देना। उनकी आत्मिक रुचि याद आती है। प्रशंसनीय है। प्रमोद आये ऐसी है.... (उनको) भी जय जिनेन्द्रके साथ यादी पहुँचाना। इस बार हमें निर्दोष आनंदके लिये समय नहीं बचा था। अभी डॉक्टरकी सूचना ऐसी होनेके कारण छह-आठ महीने मुसाफरी- (शरीरके रिश्तेदारों के लिये)-भी नहीं हो सकती, ऐसा अभिप्रायमें है। परंतु मुंबई-दादर जिनमंदिरके पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवके प्रसंग तक तो जरूर आउँगा। उस समय गजपंथाकी यात्रा साथमें करेंगे- ऐसा भाव है।

चैतन्यकी महिमाके पास जगतके पदार्थकी महिमा तो उड ही जाती है, इस आशयमें श्रीमद्जीका एक वचनामृत याद आ जानेसे लिख रहा हूँ। `लौकिक सुखकी अल्प भी सुखेच्छा तीव्र मुमुक्षुताको रोकती है।' आपका लिखा हुआ `लोकरस'का भाव भी उपरोक्त वचनामृतमें समाविष्ट है। ऐसा गूढ़ार्थवाला वचन उन महात्माका है। बस, इतना ही।

मु.श्री..... तथा..... के ऊपर लिखा हुआ पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। उचित समझे तो देना। मौखिक रूपसे बात करनेका ठीक लगे तो वैसा करना।

लि. शशिकांतके सद्गुरु वंदन।

ॐ भावनगर, ९-६-६२

सत्धर्म इच्छुक, धर्मबंधु भाईश्री....., मुंबई,

वि. आपका पत्र मिला है। समय-समय पर धर्मवार्तारूप पत्र लिखते रहना। शरीर ठीक है। वहाँसे लौटनेके बाद कमजोरी बढ़ गई थी परंतु ४/५ दिनमें ही सुधार होने लगा था। अभी १०/१२ दिन घर पर (आराममें) हूँ। बाद में दुकान इत्यादि (बाहर) जानेकी छुट्टी डोक्टर देंगे। अभी तो पहलेके बराबर ठीक है। इतना ही।

घर पर निवृत्तिकालमें श्रीमद्जीमेंसे एवं ४७ शक्तियोंका वर्णन पढ़ रहा हूँ। अहो! ज्ञानी - सत्पुरुषोंके वचनामृत वास्तवमें आत्माके लिये अमृतरूप ही है। उनका गंभीर आशय - गंभीरतापूर्वक हृदयमें आये तो ही कुछ श्रेय होगा! बाकी ऊपर-ऊपरसे समझकर चाहे जितना काल व्यतीत हो जाय-वृथा ही है। श्रीमद्जीके लेख गूढ एवं आत्मार्थीको आत्मार्थकी प्रेरणा दे वैसे हैं, यह नि:शंक है। पुन: पुन: उन ज्ञानी आत्माके प्रति भक्तिपूर्वक हृदय झुक जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्रीने तो ४७ शक्तियोंमें अद्भुत भाव प्रसिद्ध किये हैं। आत्माका अद्भुत वैभव ही खुला करके उस वैभवके प्राप्त होनेका उपाय भी साथ-साथ बताया है। उनका उपकार अमाप है। इस कालमें पूज्य गुरुदेवश्री आत्मार्थी जीवोंके लिये वास्तवमें अनुपम निमित्त हैं।

इस आत्माका अपने स्वभावकी ओर एकाग्र होनेक सिवा स्वभाव सन्मुख रहनेके सिवा-कोई (अन्य) कर्तव्य नहीं है। यह कर्तव्य वही धर्म है। वही सम्यक् है। अन्यकी अपनेरूप भ्रांतदशासे ही कल्पना की जाती है। उसमें परमात्म स्वभावरूप स्वरूपका महान अनादर है। आत्मजागृति अत्यंत होनी चाहिए। स्वरूपकी सावधानी यही भेदज्ञानका एकमात्र उपाय है। बस यही। सर्व साधककी अंतरंग क्रिया - परिणतिका चितार है। इतना ही। श्री.... (को) जय जिनेन्द्रके साथ धर्मवार्ता लिखनेके लिये कहियेगा। श्री..... के साथ इस बारके समागमसे उनकी धर्मरुचि-विचारणासे उनके प्रति प्रमोद रहता है। यही। आत्मकार्य त्वरा से करने योग्य है। प्रमाद महान शत्रु है। जो समय प्रमादमें जाता है, वह महामोहनीयकी बलवत्तरता है। यही।

लि. आपके शशिकांतके सद्गुरुवंदन।

नम: सिद्धेभ्य: भावनगर, २-१०-६२

आत्मार्थीबंधु भाईश्री... मुंबई,

वि. आपका पत्र मिला। ठीकसे फुरसत पाकर पत्र लिखनेका विचार किया था परंतु ऐसा हो नहीं पाया है। पूज्य श्री निहालभाई कल सोनगढ़ आये हैं। ऐसे आज समाचार मिले है। इसलिये शायद सोनगढ़ जाऊँगा। इसलिये यह पत्र लिख रहा हूँ। दुकानमेंसे चालु दिनमें टाइम निकल पाये ऐसा हालमें दिख नहीं रहा है। फिर भी जानेका विचार होनेके कारण रास्ता निकालनेकी कोशिश कर रहा हूँ। आपके सोनगढ़ आनेके विचारोंके बारेमें जाना। श्री..... दीपावलीके समय सोनगढ़ आयेंगे

ऐसा सुना है। तात्विंक पत्र लिखनेका अधिक स्फुरण - चैतन्यका हो तब और उसी समय लिखनेका विकल्प (भी) प्रधान बने तब होता है, ऐसा लग रहा है, फिर भी अब फिर ऐसा हो, ऐसा चाहता हूँ। आत्मरसकी प्रधानताके समय लोकरसकी सहज उपेक्षा हो जानी चाहिए। और लोकरसकी प्रधानता के समय आत्मरस जीवको सहज ही उपेक्षित होता है। यह बाद पुन:-पुन: विचारणा के योग्य है। अमूल्य चिंतामणि रत्न-चैतन्य प्रकाश-आत्माका महिमा मोक्षदायी है। उसीकी विस्मृति यह परिभ्रमणरूप संसार है। बस, यही। श्री...... इत्यादि धर्मप्रेमी भाइयोंको जय जिनेन्द्र कहियेगा।

लि. शशिकांतके सद्‌गुरुवंदन।

❈

भावनगर, ३-३-६३

प्रिय धर्मबंधु, भाईश्री... मुंबई,

आपका दि. १६/२ का पत्र मिला था, पढ़कर आपकी उल्लासित वृत्तिके कारण प्रमोद हुआ है। आपके प्रत्येक पत्रमें उस विशेषताकी छाप मेरे ऊपर है। (आपके बहनोई) कभी-कभी मिलते हैं, इस तरफका विषय अधिक कीमती है, ऐसा पर्याप्त मात्रामें उनको लगा नहीं हैं। फिर भी समर्थनरूप भाव है। अनुमोदना भी है। बस यही।

आत्मार्थीजीव स्वकार्यमें (Sincerely) परायण (निमग्न) रहता है, इसलिये परायणताकी न्यूनता यह प्रमाद भाव है जो कि आत्माका बड़ा शत्रु है। यह पर्यायके विवेकरूप विचारमात्र है। अंतरआशय तो, किसी भी ज्ञानके पहलूका, पूर्ण वीतराग विज्ञानघन यह आत्मा है, तन्मय सत् परमानंदरूप हूँ उसीको मुख्यरुपसे रखना है, यह परमार्थ न्याय है।

समयसार कलश टीका, अध्यात्म पं. राजमल्लजी कृतमें एक प्रेरणादायक विशेषता लगनेके कारण लिख रहा हूँ, श्रीमद अमृतचंद्रआचार्यदेवका आत्मानुभवका वर्णन जगह-जगह कलशमें है, जैसे मानो, कलशमें वास्तवमें अध्यात्म शांतरस झर रहा है - टपक रहा है, उसकी टीका करते हुए पंडितजी, `आत्मानुभव' की टीकामें `प्रत्यक्षरूपसे आत्माका आस्वाद' ऐसा अर्थ भरते हैं। शब्द तो ऊपरसे पढ़नेमें शायद बिलकुल सामान्य लगे, परंतु `प्रत्यक्षरूपसे' शब्दका भाव समझमें आये तो उसमेंसे प्रेरणा मिले ऐसा है। वास्तवमें तो ज्ञान-ज्ञानसे समझमें आता है, ऐसा जो परम सत्य, वह `प्रत्यक्षरूपसे' समझनेमें अपने लिये परम सत्य होगा। विषय अंतरमें मिलान करनेका है, मिलाकर देखियेगा-आशा है कि लिखनेका भाव-आशय पकड़में आ जायेगा, हालाँकि व्यक्त कम हो पाता है, ऐसा लगता है; क्योंकि प्रयोग व्याख्यामें संपूर्णरूपसे आ न सके ऐसी स्थिति हैं, तो रूबरू मिलने पर चर्चा करेंगे। बस, इतना ही।

इस कालमें, मुमुक्षु जीवोंके ऊपर, हम सभीके ऊपर, परम पूज्य गुरुदेवश्रीका अनुपम उपकार है। इस समय पूज्यश्री राजकोटमें बिराजमान हैं। अवकाश प्राप्त होने पर करीब तीन दिनके लिये जानेका विचार है। यही।

गलेका दर्द ठीक हो गया होगा। समाचार लिखना। प्रत्येक प्रसंग ज्ञानका ज्ञेय मात्र है। आत्माको उससे क्या ? कुछ नहीं। यह (बात) स्वरूप लक्षपूर्वक, उद्यमपूर्वक, बारंबार विचार करने योग्य है। पत्र लिखियेगा।

लि. शशिकांतके जय जिनेन्द्र।

❈

ॐ भावनगर, १६-४-६३

आत्मार्थी धर्मबंधु भाईश्री....., मुंबई,

वि. आपका ११/४का पत्र मिला। हकीकत मालूम पड़ी। इसके अनुसार आप दहेगाम जा नहीं पाओंगे। ऐसा समझमें आ रहा है। मेरा अभी कुछ तय नहीं है। दुकानमें मेरे पार्टनरकी उपस्थितिके ऊपर आधारित है। शायद वह कामकाजके लिये ट्रावेलिंगमें होंगे तो यहाँसे निकलना मुश्किल रहेगा। बस, यही।

श्री निहालभाई आये हैं। यह मालूम पड़ा। उनका आत्मवीर्य असाधारण है। उनके साथ अच्छा लाभ लेनेको मिला होगा। कुछ विशेषरूपमें अच्छा लगा हो तो बताना। उनके दहेगाम अथवा सोनगढ़ आनेके बारेमें कोई वात हुई हो तो बतलाना।

यह आत्मा (वर्तमान) एक समयमें अखंड परिपूर्ण स्वभाव स्वरूप है। उसकी विस्मृति यही संसार है। गंभीरतासे ध्येयरूप दिव्यदृष्टि हुए बिना सब कुछ निरर्थक हैं। सर्वथा क्लेशरूप है। ऐसा भासित हुए बिना, अक्लेशमय स्वरूपके प्रति सावधानी हो सके ऐसा है नहीं। श्री निहालभाई तो आत्मतत्त्वको बहुत बलवानपनेके साथ रसपूर्वक घोंटते हैं। धन्य है! नमस्कार है! उन भगवानाआत्माको कि जो वर्तमानमें अनंत गुणमय सिद्धपदको, निजपदको, पर्यायमें ग्रहण कर रहे हैं!! बस, यही।

आप इस तरफ आयेंगे तब साथमें रहनेकी संभवित कोशिश करुँगा। तबियत कुशल होगी। यहाँ पर श्री ..... आपकी बहिन ..... इत्यादि कुशल हैं। पत्र लिखना।

लि. शशिकांतके जय जिनेन्द्र।

ॐ भावनगर, ६-६-६३

आत्मार्थीबंधु भाईश्री....., मुंबई,

वि. आपका पत्र मिला। भाईश्री निहालभाईके वहाँ आनेके समाचार अवगत हुए। आप लोगोंको सालमें दो-तीन बार उनका लाभ मिलता रहेगा। ज्ञानी आत्मा होनेके अतिरिक्त उनकी शैली अत्यंत आत्मस्पर्शी और बलवान है। अन्य विषयका वे स्पर्श तक नहीं करते हैं, गौण कर देते हैं। वे अत्यंत सरल होनेके कारण उनके ज्यादा निकट जाया जा सके वैसा है। ज्ञानी आत्माके साथ उस प्रकारका योग जीवको शायद ही प्राप्त होता है - बनता है। मैंने दि.४/६ के दिन कलकता उनको एक पत्र लिखा है। परंतु वे मुंबई होनेके कारण देर से मिलेगा। वहाँसे अब कलकता जानेवाले होंगे! समाचार लिखना। शायद कहीं रुककर प्लेइनमें भावनगर होकर सोनगढ़ आनेवाले हो तो मुझे तार-कोलसे बताइयेगा। जिससे एरोड्राम जा सकूँ। श्री..... को पत्र लिखनेके लिये कहियेगा। आप भी भाईश्री के साथके संस्मरण जरूर लिखना।

लि. शशिभाईके जय जिनेन्द्र।

ॐ भावनगर, २६-८-६३

आत्मार्थी भाईश्री....., मुंबई,

वि. एक महिने पूर्व आपका पत्र मिला था। आलसके कारण प्रत्युत्तर लिखा नहीं गया। निवृत्ति

मिलने पर सोनगढ़ जाता हूँ। घरमें बच्चोंकी तबियत नरम-गरम रहनेके कारण, इस धार्मिक दिनोंमें इच्छानुसार वहाँ रह नहीं पाया। परम पूज्य गुरुदेवश्रीके मुखसे तो केवल अमृत ही बरस रहा है। वह शब्दोंमें कैसे आये ?! मूल्यांकन कर न सके ऐसा अमूल्य योग तथा प्रकारके पुण्यके बिना होता नहीं है, हो न सके ऐसा है। निरंतर रूपसे आत्मलाभ हेतु उनके सान्निध्यमें रहना चाहिए। रह नहीं पाता हूँ उसका क्वचित् खेद रहता है। विचार, घोलनमें जो कुछ चल रहा है उसमें संतुष्टि नहीं है - ऐसी वृत्ति चल रही है। कभी कभी हो जानेवाली चैतन्यकी स्फुरणामें काल बहुत निकल जाता है। यह वीर्यकी मंदताका सूचक है। स्वभावकी ओरका बल, अन्य सब कुछ गौण करता हुआ, वेग पूर्वक बहे, तो आत्मलाभ निकटवर्ती होता है। कार्य सहज होना चाहिए। कृत्रिमतामें बहिर्मुखपनेका ज़ोर है। अहो! टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव मिटाया न जा सके ऐसा होनेके बावजूद- मिथ्यादर्शनपनेमें उसको लांघकर निकल जाते हैं। उसमें जाने-अनजानेमें स्व अखंड त्रिकाली ज्ञानानंद चैतन्यमूर्तिकी अमहिमा और अन्य पदार्थकी महिमा जीवको है। यह पुनः-पुनः विचार करने योग्य है। विचारमें चल रही कुछएक बातें लिख रहा हूँ- आपकी तरफसे (कुछ) जानने योग्य - प्रेरणा योग्य हो सो लिखियेगा।

श्री..... वहाँ वांचनके प्रसंगसे आये हैं। आप अवकाश मिलने पर सत्संग कर रहे होंगे। इस मनुष्यपनेमें आत्मभानके सिवा और कोई कर्तव्य नहीं है। ऐसा दृढ़ निश्चय दूसरी अन्यथा प्रवृत्तिके प्रतिके उत्साहको मंद करता है। यही।

इस तरफ `सोनगढ़' आनेका कब होगा ? बताइयेगा। धर्मदासजीका `स्वानुभवमनन' (पुस्तक) पढ़ना शुरू किया है। श्री धर्मदासजीका लेखनी बहुत ज़ोरदार है। यह उनकी तीखासभरी शैलीसे मालूम पड़ता है। बस यही।

श्री निहालभाईको कभी पत्र लिखते हो कि नहीं ? वे बहुभाग दशहरा के आसपास सोनगढ़ आयेंगे।

श्री..... दसलक्षण पर्वके दौरान दहेगाम वांचन (स्वाध्याय)के लिये जानेवाले थे। ऐसा यहाँ उनके पिताश्री कह रहे थे। फिर भी किसी कारणवशात् वहाँ हो तो `जय जिनेन्द्र' कहना। श्री..... को भी जय जिनेन्द्र कहना।

लि. शशिकांतके सद्गुरुवंदन।

ॐ भावनगर, ३-९-६३

आत्मार्थीबंधु भाईश्री..... तथा ....., मुंबई,

वि. इस वर्षसे संबंधित आराधनापर्व ऐसा दशलक्षण पर्व, व्यतीत हो गया। आपके प्रति अत्र क्षण पर्यंत किसी भी प्रकारसे पूर्व काल में भी मन, वचन, कायाके परिणामसे जो-जो अपराधादि कुछ हुआ हो तो सब कुछ अत्यंत नम्रभावसे, आत्मभावसे विस्मरण करके, क्षमा चाहता हूँ।

किसी भी जीवके प्रति, किसी भी प्रकारसे, किसी भी काल में अत्यंत अल्प भी दोष करना उचित नहीं है। यह बात जिन्हें परमोत्कृष्टपनेसे निश्चित हुई है, ऐसे ज्ञानीके हृदयको भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

आप आत्मस्वास्थ्यपूर्वक कुशल होंगे।

पूज्य गुरुदेवके श्रीमुखसे हमेंशा अमृत बरस ही रहा है। बस, यही।

आपकी तरफके नवीन (समाचार) लिखियेगा।

लि. शशिकांतके जय जिनेन्द्र।

ॐ

भावनगर, ८-११-६३

आत्मार्थी बंधुश्री....., मुंबई,

वि. आपके दोनों पत्र मिले थे। परंतु प्रत्युत्तर लिख नहीं पाया हूँ। आप शायद मुंबईवाले बिनती करनेके लिये आनेवाले थे उनके साथ आओगे ऐसी आशा थी। इसके बाद ५ दिन मैं बहारगाँव गया था। आज आया हूँ। सोनगढ़से..... बता रहे हैं कि पूज्य श्री निहालभाई मुंबई आये हैं और सोनगढ़ आनेवाले हैं तो वे वहाँसे प्लेनमें निकले उससे पहले मुझे तार-फोन-डाकसे (जैसे भी) समाचार मिले उस तरह बताइयेगा। जिससे मैं Receive कर सकूँ। उनको मेरे वंदनके साथ जय जिनेन्द्र कहना। यहाँ सोनगढ़ पूज्य गुरुदेवश्रीकी दिव्यध्वनिका अलौकिक प्रवाह चल रहा है। आपको कभी-कभी याद करता हूँ। अवकाश प्राप्त होने पर आनेका (प्रोग्राम) रखना।

लि. शशिभाई के जय जिनेन्द्र।

ॐ

भावनगर, २१-१२-६३

आत्मार्थी बंधु भाईश्री....., मुंबई,

वि. आपका पत्र मिला। पढ़कर हकिकतसे अवगत हुआ। `वातावरणमें फर्क' लिखा हुआ था, उसमें Indirect ऐसा जाननेको मिला कि कुछएक व्यक्तियाँ (Top rankकी नहीं) ऐसा मानती हैं कि हम लोग पूज्य गुरुदेवश्री से ज्यादा भाईश्रीको सन्मान दे रहे हैं। तो ऐसे किसी भी माननेवालेको समर्थन नहीं मिलना चाहिए। ऐसा वर्तन अनजानेमें भी किसीको (ऐसा) अनुमान करनेके लिये प्रेरित करे इस तरहसे भी न हो इसलिये आपका लिखा हुआ रेकोर्डिंग मशीन यहाँ आ गया है। अच्छी क्वोलिटीका मिला है। ..... रुमके लिये लिखा तो फिलहाल तुरंत किरायेसे रखनेकी जरूरत नहीं है। पूज्य गुरुदेवश्रीका पाँचमाहका विहार है। इसके बाद सोचेंगे। इस दौरान..... के पासका रुम..... के मकानमें खाली होगा तो वह ज्यादा ठीक लग रहा है। फिलहाल तुरंत तो Temporary एकांत स्थल..... के सहयोगसे मिल जाता है। उससे काम चल रहा हैं। बस यही।

आपकी लिखी हुई आत्मभावना सुंदर है। आत्मार्थीके घोलनमें होती है। स्वद्रव्यकी महत्ता उतनी बढ़ जाओ कि फलस्वरूप विकल्प टूट जाये। शुभाशुभमें मात्र नपुसंक वीर्य ही अटकता है। में तो वीर हूँ। बेहद ताकतवान हूँ। मात्र विभावमें रुक जाऊँ वैसा नहीं हूँ इत्यादि प्रकारसे आत्मवीर्यका विकास होता है। पूज्य गुरुदेवश्री व्याख्यानमें केवल अकेला महामहिमावान चैतन्य ही बताते हैं। क्या लिखूँ ? शब्दातीत बात बताई जा सके ऐसा नहीं है। यही।

वहाँ `समयसार' जयसेनाचार्य की टीका सहितका प्राप्य हो तो वह तथा `परमात्मप्रकाश' योगीन्द्रदेवकृत प्राप्य हो तो मेरे लिये लेकर भेजना। शायद श्रीमद राजचंद्र शास्त्रमालाकी संस्थामेंसे मिल जाय तो। बस यही। पत्र लिखते रहना।

पूज्य भाईश्रीकी ओरसे कोई समाचार नहीं है। १/२ दिनमें पत्र लिखनेका सोच रहा हूँ।

लि. शशिकांतके जय जिनेन्द्र।

श्री गुरुकी मीठी स्मृतियाँ...

पूज्य भाईश्रीने अनेक वर्षोंतक पूज्य गुरुदेवश्रीके अति निकट आत्मीयतासभर समागमका लाभ प्राप्त किया। भावी तीर्थाधिनाथका निकट समागम, परिचय आत्मिक पुरुषार्थ वृद्धिगत होनेमें निमित्त हुआ।

प्रस्तुत प्रकरणमें पूज्य भाईश्रीके प्रवचनोंमें से प्रसंगोंको समाविष्ट कर लेनेका प्रयत्न किया है। पूज्य भाईश्रीके प्रवचनोंकी संख्या तो विशाल पैमाने पर है परंतु जितनी सामग्री एकत्रित हुई उसमेंसे खास-खास प्रसंगोंको यहाँ पर अवतरित किया है। प्रस्तुत प्रसंगोंमें पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ हुई सूक्ष्म तत्त्वचर्चा, पूज्य गुरुदेवश्रीको वे कैसी गुणदृष्टिपूर्वक देखते थे इस बातके दर्शन हो रहे हैं। हे परम कृपालु ! आप स्वयं बोधस्वरुप हैं। आपके श्रीमुखसे बहे हुए मीठे संस्मरणोंमेसे आपका बोधस्वरूप परिणमन हमें भी बोध देता है। आपश्री की गुरुभक्ति एवं गुणदृष्टि देखकर नतमस्तक हो जाता है। आपके अनेक उपकारोंमेंसे यह एक विशिष्ट उपकार अविस्मरणिय है।

(१) गुरुदेव किसी भी जिज्ञासुका हमेशा सत्कार करते हैं। और यह तो हमारा खुदका अनुभव है कि हम यदि जिज्ञासासे गुरुदेवके पास जाता तो अपना व्यक्तिगत समय देते थे। मैं तो गुरुदेवके पास कितनी बार था। चर्चाके लिये तो वे खास समय देते थे फिर भी उनके पास जाय तो बहुत ही प्रेमसे और प्रमोदसे चर्चा करते थे। हमने तो यह अनुभव किया है। उनके ज्ञान-ध्यानके समयपर भी गये हैं; उनके निजी स्वाध्यायके समय में भी गये हैं। दोपहरमें एकांत में स्वाध्याय कर रहे हो, आराम करके उठते थे, बारह-साढ़े बारह बजे आराम करके उठे तब जाऊँ तो आधा घंटा, पोन घंटा, घंटे-घंटे तक चर्चा की है। (परमागमसार, नं.६३०, २२:०० मिनट)

(२) पूज्य भाईश्रीने प्रवचनोंमें सत्संगकी बहुत महिमा गाई है। प्रत्यक्ष ज्ञानीपुरुषका योग हो तो उनके वचन पर किस प्रकारका विश्वास होता है उसका उल्लेख करके आपने पूज्य गुरुदेवश्रीके समयमें चल रही चर्चाका भी निर्देश करके बोध दिया है।

हम दूसरी चर्चा करते थे। गुरुदेव ऐसा बोले, दोपहरके बारह बजे वैसाख महिनेकी कड़ी धूप हो और ऐसा कहे कि, यह सूर्य नहीं है, चंद्र है। फिर हम पूछते थे ताकत है हाँ करनेकी ? यह हमारी चर्चाका विषय रहता था। उनकी बातमें कोई शंका न उठे, कहीं भी शंका नहीं। (श्रीमद् राजचंद्र, नं.१०८, ४०:०० मिनट)

(३) हे नाथ ! सत्संगकी कीमत कितनी होनी चाहिए इस बातका स्मरण करते हुए आप फरमाते हो,

एकबार ऐसा हुआ कि अन्य मुमुक्षुकी गाड़ीमें सोनगढ़ जानेका प्रोग्राम बन रहा था। बसमें कई बार जाते थे परंतु मोटरकी सुविधा हुई इसलिये उस भाईने कहा, मैं रविवारको लेने आऊँगा, हम मोटरमें साथ जायेंगे। उनकी आदत ऐसी कि देरसे आते थे। एक-दो बार सूचना दी कि हमें प्रवचनसे पहले पहुँचना चाहिए... तब एक बात बताई कि, हमें ३२ किलोमीटर चलकर सोनगढ़ जाना पड़े ऐसा हो तो एक दिन पहले सुबह चालू करना पड़े। थोडी विश्रांति लेते-लेते पहुँच पाय ऐसा हो तो देरसे पहुँचेंगे क्या ? एक घंटे (के प्रवचन)के लिये यदि चौबिस घंटा चलना पड़े तो एक मिनट (का प्रवचन) भी गंवायेंगे क्या ? तो यह जो साधन मिला है उसका दुरुपयोग हो रहा है। मैंने कहा, मैं तो बससे जाऊँगा।

कहनेका मतलब क्या है कि सत्संगकी कीमत क्या है ? उसके एक मिनटकी भी कीमत कितनी है यह जब तक समझमें नहीं आयेगा तब तक उसके एक घंटेकी कीमत भी नहीं समझमें आयेगी और शायद चौबीस

घंटेका सत्संग रहेगा तो भी समझ नहीं आयेगी।

(४) पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयंगम किये हुए उपकारको आप कितने प्रमोदपूर्वक व्यक्त करते थे ! अहो ! गुरु उपकारसे भीगा हुआ आपका हृदय कितना भक्तिमय है इसके दर्शन यहाँ होते हैं।

मैंने तो प्रत्यक्ष देखा है कि मोक्षमार्गका अथवा अभी तक उपलब्ध जो समस्त जैन साहित्य है इसमें स्पष्टताकी दृष्टिसे देखें तो अभूतपूर्व स्पष्टता है ! मैंने उसके लिये उपमाका प्रयोग किया था। गुरुदेवको वह उपमा बहुत पसंद आई। लोग ऐसा कहते हैं कि बालोंकी लटोंके बीचकी प्रत्येक मांगमें तेल डालते हैं। स्पष्टता करनेके लिये मैंने ऐसी उपमा दी थी कि, आपने तो एक एक बालमें तेल डाला है !! गुरुदेव बहुत प्रसन्न हो गये थे। मैंने बात कही कि, स्पष्टता बहुत आई है। वे स्वयं ऐसा कहते थे कि, यह द्रव्य ही ऐसा है। अपने द्रव्यके लिये स्वयंको आश्चर्य होता था ! १०३ डिग्रीका बुखार हो और व्याख्यान करे तो खुदको पता नहीं होता था कि इस शरीरको १०३ डिग्री बुखार चल रहा है। देहका ख्याल रहता नहीं था। सिर्फ आत्माके ऊपर इतना ज़ोर था !!

(आत्मसिद्धिशास्त्र, नं.६३, ४५:०० मिनट)

(५) पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ चलती हुई सूक्ष्म तत्त्वचर्चाका एक अंश देखे।

गुरुदेवके समयमें एक प्रश्न चला था कि, स्वरूप भास्यमान हुआ है उस समय श्रद्धा की स्थिति क्या है ? गुरुदेवश्रीके समक्ष यह मेरा सीधा प्रश्न था। तब कहा कि, स्वरूप भास्यमान तो हो गया है, श्रद्धान मिथ्या है परंतु मंद है।

मैंने फिरसे पूछा कि, क्या ज्ञान जात्यांतर हुआ है ? क्योंकि सन्मुख हुआ है इसलिये। तब इतनी सूचना दी कि, यह विषय सूक्ष्म है। ज्ञान जात्यांतर यहाँ से होता है परंतु प्रधानतया-मुख्यतया ऐसा कहा नहीं जाता है। अनुभव होने पर `ज्ञान जात्यांतर हुआ' ऐसा कहा जाता है। क्योंकि वहाँ से सम्यक्पना लागू हो जाता है।

(आत्मसिद्धिशास्त्र, नं.९२, १५:०० मिनट)

(६) पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ घटित हुआ एक विशिष्ट प्रसंग स्मरण करते हुए वे कहते हैं,

गुरुदेवसे सर्वप्रथम प्रश्न यह पूंछा था। २२-२३ वर्षकी उम्रमें नया-नया गया था तब कृपालुदेवका ग्रंथ सबसे पहले पढ़ा था। इससे पूर्व अन्य शास्त्रोंका वांचन कुछ था नहीं। कृपालुदेवके प्रति श्रद्धा आई थी और पूछा कि, कृपालुदेवके वचनमें अखंड मोक्षमार्ग निहित है ऐसा लग रहा है, आपको कैसा लगता है ? `हाँ' करते-करते गुरुदेव अपनी गद्दीसे आधे खड़े हो गये थे। मुझे इतने उल्लासपूर्वक `हाँ' कही, इतने उल्लाससे हाँ दी कि यूँ आधे ऊपर उठकर हाँ कही, बोले, हाँ ! ऐसा ही है। (आत्मसिद्धिशास्त्र, नं.१०३, २०:०० मिनट)

(७) पूज्य गुरुदेवश्रीके एक वचनकी कीमत कितनी ? इस बातकी स्पष्टता करते हुए कहते हैं, सत्पुरुषके परिणमनके लक्षपूर्वक एक वचन भी यथार्थ गुंजन करे, उनके वचनका आशय अंदरसे (ज़रा भी) खिसके नहीं और अंतरखोजमें रहा करे, गहराईमें उतरे तो भगवान त्रिलोकनाथपना-सिद्धपद प्राप्त हुए बिना रहेगा नहीं। एक वचनसे इतना फायदा है।

बहुत लोग पूछते थे कि, आप गुरुदेवके साथ बहुत रहते हो। गुरुदेव चक्कर लगा रहे हो तब आप जाते

हो, गुरुदेव जंगल जा रहे हो तब आप जाओ, गुरुदेव बैठे हो तब आप बैठे रहो। इसमें कारण क्या है ? तो कहा, कब कौनसा वचन निकलेगा और कब इस आत्माको वह तीरकी तरह भीतर चोट कर जायेगा इसकी अपनेको खबर नहीं है। परंतु इतनी सूझ हो, इतना विवेक हो तो अधिक से अधिक संग करे। क्योंकि उनके श्रीमुखसे कब कौनसा वचन खीरेगा उसका कोई नियम नहीं है और इस आत्माकी किस क्षण कैसी योग्यता होगी उसका भी स्वयंको पता नहीं है। अतः ऐसी किसी धन्य पलकी अपेक्षा रखकर मुमुक्षु ज्ञानीपुरुषका सत्संग अधिक से अधिक करना चाहता है। (आत्मसिद्धिशास्त्र, नं.१०५, १५:०० मिनट)

(८) पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ सम्यक् सन्मुख चल रहे परिणमनकी सूक्ष्म चर्चा हुई थी उसे याद करते हुए कहते हैं,

एक बार गुरुदेवके पास इस विषयके ऊपर थोड़ी सूक्ष्म चर्चा करनेके लिये गया था। जिसे अनुभव होता है- सर्व प्रथम स्वानुभव होता है तब आप कह रहे हो और शास्त्र भी कह रहे हैं कि, उसमें विकल्प की कोई मदद नहीं रहती है। उस समय विकल्प तो आत्माके ही होते हैं, आत्माके विकल्प चलते-चलते ही अनुभव हो जाता है और आप इन्कार कर रहे हो, शास्त्रकार भी इन्कार करते हैं। तो यह अनुभव हुआ किस तरह ? यह मेरा प्रश्न था।

गुरुदेवने कहा कि, देखो ! वे विकल्प बढ़ गये या उनका नाश हुआ ? तो कहा, नाश हुआ। यदि उस (विकल्प)के द्वारा (अनुभव) हुआ होता तो उसका नाश नहीं होता, वे बढ़ जाते। इसलिये विकल्पसे अनुभव हुआ नहीं है। तो फिर अनुभव हुआ किस तरह ? यह मेरा प्रश्न खड़ा रहा। तो कहा कि, देखो ! लक्षमें आत्मा आया था या नहीं आया था ? तो कहा, आया था। स्वरूपकी पहचानके कालमें स्वरूपलक्ष हुआ। यह स्वरूपलक्ष हुआ वह ज्ञानकी पर्याय है। और उस समय स्वरूपकी महिमाके साथ चैतन्यवीर्यकी स्फुरणा भी हुई। इस ज्ञानको ज्ञानबल कहते हैं। यह ज्ञानबल आगे बढ़ते-बढ़ते इतनी डिग्री तक बढ़ गया कि वह निर्विकल्प स्वरूपके साथ तदाकार हो गया। उसको ही पुरुषार्थ कहते हैं, उसको ही ज्ञानसाधन कहते हैं। तो ज्ञान साधन है, विकल्प साधन नहीं है। (कलशटीका श्लोक-५, नं.१०९, ४५:०० मिनट)

(९) पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रेमको याद करते हुए कहते हैं,

हमारे जैसे यदि प्रवचनमें देरसे पहुँचे हो तो गुरुदेव गुस्सा हो जाते थे। हमारा ऐसा हुआ था। भादों वदी (कृष्णा) एकमके दिन `संघजमण' (समूहभोजन) होता था। भोजनमें दो बज जाते थे। वहाँ (सोनगढ़) तो ३ से ४ प्रवचन रहता था। सभीको बसमें साथमें बैठकर जानेका रहता था, उसमें उस दिन टायर पंचर हो गया । १५-२० मिनट देरसे पहुँचे। गुरुदेवने देखा और कहा, बैठ जाओ, वहाँके वहाँ बैठ जाओ, आगे नहीं आनेका। हम आगे बैठते थे। तो कहा, वहींके वहीं बैठ जाओ। तबसे फेरफार कर डाला। उस दिन संघजमण नहीं रखना है। गुरुदेव डांट लगाये तो भी वह प्रेमकी निशानी है। सभीके ऊपर गुस्सा नहीं करते थे। वह (गुस्सा) प्रेमकी निशानी है, करुणा विशेष है। उसमें सुल्टा लेनेका होता है, उल्टा नहीं लेना चाहिए।

(श्रीमद् राजचंद्र, नं.३९५, ५०:०० मिनट)

(१०) पूज्य गुरुदेवश्रीको आप स्वभाव दृष्टिसे देखते थे यह बात निम्न प्रसंग परसे समझी जा सकती है। गुरुदेवने एक बार ऐसा प्रश्न किया कि, सोनेका भाव क्या है ? तो किसीने कहा, पांच हजार रुपये तोला,

किसीने साढ़े पांच हजार रुपये तोला, ऐसा कहा। जिसको जो पता था वह कहा। इसलिये गुरुदेव हंस गये। ऐसा कहा, हम ऐसा प्रश्न नहीं पूछ रहे हैं। हम प्रश्न पूछ रहे हैं कि सोनेका स्वभाव क्या हैं ?

ज्ञानीपुरुष स्वभाववादी होते हैं। प्रत्येक बातमें स्वभावको देखनेकी उनकी नज़र रहती है।

(श्रीमद् राजचंद्र, नं.५०६, २८:०० मिनट)

(११) धर्मके अनेक बाह्य साधनोंमें सत्संगको गौण करके अन्य साधनोंमें प्रवृत्ति नहीं करना। इस बातका बोध देते हुए वे कहते हैं,

हम गुरुदेवका सत्संग करनेके लिये सोनगढ़ जाते थे। बसमें जाते थे, कभी ऐसा हो जाता था कि, व्याख्यान सुननेके लिये पांच मिनट पहले ही वहाँ पहुँचे हो जाते। बगलमें ही जिनमंदिर है। वहाँ दर्शन करके व्याख्यानमें जाना या सीधे व्याख्यानमें जाना ? हम सीधे व्याख्यानमें जाते थे। व्याख्यान समाप्त होनेके बाद, सुननेके बाद दर्शन करने जाते थे। क्योंकि दर्शन शांतिसे करने हो तो देर लगेगी। भगवानके दर्शन करना यह भी बाह्य साधन है और सत्संग भी बाह्य साधन है। प्रथम क्या करना ? पहले स्वाध्यायमें जाना।

---

*(**पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा**)*

डाले हुए हैं वे भीतर में कार्य किये बिना रहेंगे ही नहीं। (**स्वानुभूतिदर्शन-२५४**)

प्रश्न :- हमारे गाँव में दिगम्बर जिनमन्दिर नहीं है, श्वेताम्बर मंदिर है; तो क्या वहाँ जाने से हमें नुकसान होगा ?

समाधान :- यथार्थ तत्त्व की समझ होनेपर बाह्यमें क्या करना वह अपने आप समझ में आ जायगा। मैं ज्ञायक हूँ, चैतन्यस्वभाव हूँ, यह विभाव मेरा स्वभाव नहीं है और शरीर भिन्न है - ऐसी भेदज्ञान की बात समझने पर फिर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु कैसे होते हैं और अन्यत्र जानेसे क्या हानि होती है वह अपने आप समझ में आ जायगा।

मूल प्रयोजनभूत ज्ञायक को समझो, उसीमें सच्चे देव-शास्त्र-गुरु आ जाते हैं। देव कैसे होते हैं ? कि वे वीतरागी होते हैं, समवसरण में विराजते हैं, उन्हें विकल्प नहीं है, स्वरूप में पूर्णतया लीन हो गये हैं, उनकी नासाग्रदृष्टि है। भगवान वीतरागी हैं तो प्रतिमा भी वैसी होनी चाहिये। प्रतिमा में फेरफार करना ठीक नहीं है; इसलिये क्या करना सो अपने आप समझ लेना।

भावमें सच्चापन हो तो बाह्य में नमस्कार भी सच्चे को होता है; यह सब यथार्थ तत्त्व समझने से समझ में आ जायगा।

जो ज्ञायक को समझते हैं उनका व्यवहार भी सच्चा होता है। वे ही देव-शास्त्र-गुरु को समझ ते हैं। जैसे भगवान हैं वैसी ही प्रतिमाजीकी स्थापना होती है और उन्हीं प्रतिमाजी को नमन होता है। तत्त्व समझनेपर अपने आप समझ में आ जायगा कि क्या करना चाहिये। जब अपने भावमें निश्चय-व्यवहार समझ में आयेगा, तब अपने आप मिथ्या मान्यता छूट जायगी। नहीं छूटे तबतक विचार करते रहना कि सत्य क्या है ? वह जब समझ में आ जायेगा तो उनको (जो सच्चे नहीं है उन्हें) मानने से क्या नुकसान है, वह अपने आप समझ में आयगा और वह छूट जायगा।

(**स्वानुभूतिदर्शन-२५५**)

मार्गदर्शन

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा लिखित `अनुभव संजीवनी'में से चुने हुए मुमुक्षुजीव के लिये प्रयोजनभूत मार्गदर्शन संबंधित वचनामृत

मुमुक्षुकी भूमिकामें जीवको आत्महितकी भावनाको बाधा पहुँचानेवाले प्रसंग भी आते हैं, तब वैसे प्रसंगमें `सद्उपयोगपूर्वक' विचार सहित प्रवर्तन करनेकी इच्छा रखना। `सद्उपयोग' का मतलब जिसके फलमें आत्म-अहित न हो वैसी सावधानी रखना। और वैसा पुरुषार्थ जितना भी हो सके, उसके लिए दृढ़ता रखनी चाहिये। इस प्रकारसे प्रवर्तन करते वक्त `अनन्तकालमें जो प्राप्त नहीं हुआ है उसको प्राप्त करना है', यह लक्षमें रहना जरूरी है। उसको प्राप्त करनेमें थोड़ा समय ज्यादा लग जाय उसमें इतनी हानि नहीं है परन्तु जिसकी प्राप्ति करनी है, उस विषयमें अगर भ्रांति हो गई या भूल हो गई तो उसमें बहुत हानि है। इसलिए सत्पुरुषके आश्रयमें / आज्ञामें रहते हुए, और अगर प्रत्यक्षका वियोग हो तो उसमें कल्याणका भी वियोग है, ऐसा समझकर समागमके लिए चित्त रहता हो तब तो हानि नहीं होगी, सत्पुरुषका स्वरूप भास्यमान हुआ हो तब तो हानि नहीं होगी बल्कि अनुक्रमसे हित साधता है। (५८२)

✻

सत्संगकी रुचि होने पर, असत्संगकी अरुचि होना सहज है। फिर भी यदि असत्संगमें रहना पड़ता हो, जब वैसा प्रसंग प्राप्त हो तब उसमें उदासीनता सहज रहने पर ही ज्ञानको आवरण नहीं आता। अतः मुमुक्षुजीवको जागृत रहकर असत्संगमें नीरस / उदास रहना योग्य है, तो ही `सत्ज्ञान' की प्राप्ति होगी अथवा समझमें आयेगी। अन्यथा जो बोध सिर्फ धारणामें रहता है उसको तो बहुत प्रकारके अंतराय होते हैं। सामान्य रुचिवान मुमुक्षुको ऐसा असमाधान हो आता है, कि बहुत दीर्घकाल पर्यंत सत्संगमें रहनेके बावजूद भी ज्ञान क्यों प्रगट नहीं हो रहा है ? परन्तु यथायोग्य जागृतिके अभावमें `असत्संगमें उदासीनता नहीं रहना' - उस प्रकारमें प्रवर्तन रहा करता होनेसे अंतरंग अंतराय-कारण खुदको समझमें नहीं आता है। अतः ऐसा निश्चय कर्त्तव्य है कि जगत और मोक्षका मार्ग - वे दोनों एक नहीं है। (५८६)

✻

विज्ञप्ति

नवम्बर-२०११ का स्वानुभूतिप्रकाश अंक
मातुश्री वेलबाई विशनजी सावला
ह. श्री झवेरीभाई विशनजी सावला, दादर मुंबई की ओर से प्रकाशित किया गया है।

द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-३३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.१०-८-१९९१

पीछले अंकसे शुरु

मुमुक्षु :- वे मनआश्रित परिणाम हैं न !

पूज्य भाईश्री :- मनआश्रित परिणाम नहीं, वहाँ स्पष्ट अनुभवांशसे प्रतीति है। सिर्फ मन नहीं। मनआश्रित है फिर भी पूरापूरा - सर्वथा ऐसे नहीं है। ज्ञानसामान्यके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है। ज्ञानवेदनके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है ऐसा कहो या ज्ञानस्वभावके आधारसे ज्ञानस्वभावका निर्णय है (ऐसा कहो)। व्यक्त अंशके आधारसे व्यक्त स्वभावका - ज्ञानस्वभावका निर्णय है। वह स्वभावके व्यक्त अंशका आधार है।

मुमुक्षु :- जहाँ व्यक्त अंश है वहाँ ही रागका आंशिक अभाव हुआ न ?

पूज्य भाईश्री :- वहाँ राग है ही नहीं न। वह तो स्वभाव अंश है उसमें राग कहाँ था। अज्ञानीको भी नहीं है। जो व्यक्त स्वभाव अंश है उसमें तो रागका तीनोंकाल अभाव ही है। वह तो स्वभाव है। स्वभाव कि जो अनउभयस्वरूप है (अतः) न तो पर्यायस्वरूप है न तो द्रव्यस्वरूप है। यदि केवल द्रव्यस्वरूप होता तो पर्यायमें व्यक्त नहीं होता। क्या बात है यहाँ ? कोई-कोई इसमें उलझनमें आते हैं कि, नित्य और अनित्य दो पहलू तो बराबर समझमें आते हैं, फिर यह अनउभयकी नई बात कहाँसे आ गई ? कि जो द्रव्य भी नहीं और पर्याय भी नहीं ! और नित्य (अंशको) भी व्यवहारमें डालते हैं ! नित्य तो वास्तवमें निश्चयनयका विषय है, फिर भी उसे व्यवहारमें डालते हैं। अतः दो जगह उलझन हुई - निश्चयको व्यवहार कहा और अनउभयकी बात अलग-से की। यह तो बात ही कोई नई है !! हम तो द्रव्य, गुण, पर्यायका समझते हैं, सामान्य-विशेषको समझते हैं, दोनोंको मिलाकर प्रमाणको समझते हैं, लेकिन यह तो दोमेंसे एक भी नहीं - ऐसा तीसरा क्या है ? (तो समाधान ऐसा है कि) यदि (स्वभाव) केवल द्रव्यस्वरूप या नित्यस्वरूप होता तो पर्यायमें नहीं होता (और) यदि पर्यायमें है उसे (सिर्फ) अनित्य ले लो तो द्रव्यमें नहीं होता - नित्यमें नहीं होता। अतः न तो उसे नित्यता लागू पड़ती है नाही अनित्यता लागू पड़ती है। अनउभयस्वरूप है, जाओ ! उभयस्वरूप न लिया ! अनउभयस्वरूप लिया !!

किसके आधार पर (स्वरूप) निर्णय है ? रागका आधार नहीं है। मनका आधार कहनेसे रागका आधार हो गया (परंतु) ऐसा नहीं है। (स्वरूप निर्णय होता है) तबसे (स्वरूप) सन्मुख होता है और सन्मुखतामें पुरुषार्थ वृद्धिगत होता है तब अनुभव होता है। लक्ष्य तो जबसे हुआ तबसे वही है। पुरुषार्थमें जितना कारण दे उतना कार्य होता है, ऐसा कहना है।

इस तीसरे बोलमें प्रमाणका विषय लिया कि, जिसमें मुख्य-गौणका प्रश्न नहीं है। कभी क्लासमें नहीं बैठे फिर भी प्रमाणका विषय खोला है।' कोई ऐसा कहे कि, वे तो निश्चयाभासी थे और निश्चयकी बातें ही किये जाते थे, परंतु वैसा नहीं है। यह प्रमाणका विषय कितना स्पष्ट है ! और उनको (कहनेवालोंको) पूछो तो पता भी न पड़े। (ये तो) स्पष्ट विवरण कर सकते हैं, व्यक्त कर सकते हैं। विषय ज्ञानमें आना एक बात (है), इन्होंने तो व्यक्त किया है। वरना व्यक्त न करे तब तक दूसरेको विश्वास भी न आये। परिणमन तो उनका अंतर्मुखी, अरूपी परिणमन है वह बाहरमें कैसे पता चले ? वह तो बाहर आये ऐसी कोई बात सामने आये तभी मालूम पड़ सकता है, वहाँ तक मालूम नहीं पड़ता।

४. `स्वके मापसे अन्यका माप किया जाता है।' यह एक General सिद्धांत है। हर एक आदमी अपने दृष्टिकोणसे दूसरेको नापता है। अपना दृष्टिकोण है वह नापनेका साधन है और उससे

दूसरोंका नाप आता है। यह सर्व सामान्य सिद्धांत है। मेरे पास जो नापदंड हो उस नापदंडसे नापूँगा। जो नापदंड होगा उसीसे नाप लूँगा। नापनेके साधनसे नाप होगा। प्रत्येक जीवके पास क्या साधन है? अपनी दृष्टि। `जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' अतः अपने नापसे दूसरोंका नाप होता है। ये `ईश्वरकर्ता' कहाँसे निकला ? ईश्वर जगतका कर्ता कहाँसे हो गया ? कि जगतके पास तो कर्तृत्व ही पड़ा है, फिर ईश्वरको कर्ता नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे ? अपने नापसे ईश्वरको नापेगा ज्ञानीको भी अपने नापसे नापेगा। जैसे ज्ञानी खाते हैं वैसे ही मैं खाता हूँ, मैं बोलता हूँ, ऐसे वे बोलते हैं। मैं सोता हूँ ऐसे वे सोते हैं, मैं उठता हूँ, वैसे वे उठते हैं। मैं बैठता हूँ, वैसे वे बैठते हैं। इसतरह सामान्यतया अपने नापसे दूसरोंका नाप किया जाता है। अब धर्मीकी बात करते हैं।

`**मैं त्रिकाली ही हूँ,...**' धर्मीके पास क्या दृष्टिकोण है ? धर्मीकी दृष्टि क्या है ? कि, `**मैं त्रिकाली ही हूँ, इस अनुभवमें परिणाम मात्र गौण है,...**' (प्रमाणमें) तो मुख्य-गौण कुछ नहीं है। (यहाँ कहते हैं कि), यहाँ परिणाम मात्र गौण है, चाहे शुद्ध हो चाहे अशुद्ध हो, परिणाम मात्र गौण है। `**चाहे बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक।**' सभी परिणाम गौण हैं। `**ऐसे धर्मीको कभी परिणामकी मुख्यता नहीं होती।** कभी उसे परिणामकी मुख्यता नहीं होती। `**अतः उसे अन्य धर्मी जीवमें भी...**' अतः दूसरे धर्मीका नाप भी वैसे ही करते हैं। ऐसा जो धर्मी है वह दूसरे धर्मात्माका नाप भी इसी तरह करता है कि, `**उसे अन्य धर्मी जीवमें भी परिणामकी मुख्यता नहीं दिखाई देती;...**' (अर्थात्) मुझे परिणामकी मुख्यता नहीं है (तो) उस धर्मात्माको भी परिणामकी मुख्यता नहीं हो सकती। `**जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।**' जिसको परिणाम देखनेकी मुख्यता है वह तो प्रवृत्तिकी मुख्यता देखेगा कि, वे क्या करते हैं ? कैसे उनकी सर्व प्रकारकी बाह्य चेष्टा रहती है ? क्योंकि उसे परिणामकी मुख्यता है। धर्मीको परिणामकी मुख्यता नहीं है इसलिए वे बाह्य प्रवृत्तिकी मुख्यता नहीं देखते।

मुमुक्षु :- माताजी (पूज्य बहिनश्री) का बोल है न कि, हम तो सभीको भगवान ही देखते हैं।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, हम तो सभीको भगवान ही (देखते हैं)। अनंत ज्ञानियोंकी एक दृष्टि है - हम तो सबको भगवान देखते हैं।

५. `धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है।**' चौथे प्रकारमें तो धर्मी, धर्मीको (किस नज़रसे) देखते हैं, यह बात ली। अब पाँचवेंमें धर्मी, अधर्मीको किस नजरसे देखते हैं, (ये कहते हैं)। - `धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्तमान दोनोंको एक साथ देखता है।**' (अर्थात्) हम सिर्फ परिणामको नहीं देखते, उसके त्रिकाली (स्वभावको) भी देखते हैं। भगवान आत्माको भी देखते हैं और उसके वर्तमान दोषको भी देखते हैं। और उसमें ऐसे देखते हैं - धर्मी, अधर्मीको उसमें इसतरह देखते हैं कि, `**त्रिकालीका अभान होनेसे...**' (अर्थात्) इस जीवको अपने त्रिकाली (स्वरूप)का पता नहीं है, उसका उसे भान नहीं है। खुद क्या है उसका उसे भान नहीं है। `**त्रिकालीका अभान होनेसे अधर्मीको परिणाम मात्रमें एकत्व होता है,...**' अतः उस अधर्मीको तो परिणाम मात्रमें एकत्व होता है। उसका कारण क्या है कि, वह अपने त्रिकालीका भान भूला है। `**इसका धर्मीको ज्ञान रहता है।**' धर्मीको उसका ज्ञान रह जाता है, उनके प्रति द्वेष नहीं होता। इसको क्यों ऐसा होता है ? ऐसे द्वेष नहीं होता। वह बेचारा जीव अपने त्रिकाली स्वरूप-भगवान आत्माको भूला है, अतः उसको एक समयके परिणाममें एकत्व होता है, उसका धर्मीको ज्ञान रह जाता है, (इसलिए) राग भी नहीं होता और द्वेष भी नहीं होता, सिर्फ उसका ज्ञान रह जाता है। मुझे तो उसका त्रिकाली (स्वरूप) और वर्तमान दोनों दिखते हैं। उसमें ऐसा दिखता है कि, उसके वर्तमानमें वह अपने

त्रिकाली(स्वरूप)को भूला है और एक समयके परिणाममें उसका एकत्व हो रहा है। यह उसकी परिस्थिति है। फिर उसको रोष क्या करना ? उसको तोल क्यों देना ? (अब छठा मुद्दा)।

६. `वृत्ति अपेक्षा त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।' यह आपका उत्तर आया। वृत्ति अपेक्षासे त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको परिणामकी अपेक्षासे देखे तो, वृत्ति अर्थात् परिणामकी मुख्यतासे देखे तो जिसको त्रिकालीकी मुख्यता हुई है ऐसे धर्मीको, **`सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है,...'** देखो ! चौथे (मुद्देमें) ऐसा कहा कि, उन्हें एक भी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। धर्मीको शुद्ध या अशुद्ध एक भी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। कोई कहे कि, परंतु उन्हें परिणाम तो दो जातिके हैं - एक उनको बुद्धिमें देव, गुरु, शास्त्र प्रत्ययी रागकी भी प्रवृत्ति है और एक उन्हें वीतरागी परिणति भी है, तो ये दोनों एक सरीखी हैं ? तो कहते हैं - नहीं, दोनों एक सरीखी नहीं हैं। त्रिकालीको मुख्य किया है और उसका आश्रय करनेवाली जो शुद्ध वृत्ति है उसकी मुख्यता है दो की बराबरी की जाये तो। निश्चय मुख्य है और व्यवहार गौण है, ऐसा कहना है। ऐसे चलता है।

`मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है, वर्तती है; चाहे बाह्यांशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।' (अर्थात्) भगवानकी भक्ति करे, भगवानकी आरती करे, पूजा करे, अरे...! इन्द्र भगवानके सामने नाचे ! घुँघरू बांधकर नाचे। ! चर्चामें लिया है न ! इन्द्र भी बाल तीर्थंकरके आगे घुँघरू बांधकर नाचता है। (कोई तर्क करे कि), लेकिन ये तो अभी चतुर्थ गुणस्थानवाले हैं, अभी तो उनका उपदेश भी सुना नहीं ! यह तो एक ऐसा अभिप्राय प्रवर्त रहा है कि, जिसका उपकार हुआ हो, उसकी भक्ति करें ! हमें जिसका उपकार न हुआ हो उनकी भक्ति हम कैसे करें ? (तो उसका जवाब ऐसा है कि) जिस तीर्थंकरने जन्म लिया, वे तीर्थंकर होनेके पहले उपदेश तो देंगे नहीं, तेरहवें गुणस्थानमें आनेके पहले उपदेश तो देंगे नहीं। तो जब यहाँ चतुर्थ गुणस्थानमें बाल तीर्थंकरने जन्म लिया, तब इन्द्र (स्वयं) सम्यग्दृष्टि होकर भी भक्ति क्यों करते हैं ? क्या उनको ज्ञान नहीं है ? सम्यग्दृष्टि अज्ञानी हैं कि घुँघरू बांधकर भक्ति करते हैं ? घुँघरू बाँधनेका अर्थ क्या है, पता है ? कि स्वयंको इतनी नम्रता आयी है ! एक ज्ञानीको दूसरे ज्ञानी जीवके प्रति कितनी नम्रता !! क्या उन्हें नहीं पता कि उनका गुणस्थान कौन-सा है ? तीर्थंकरने जन्म लिया वे कौन-से गुणस्थानमें हैं यह क्या नहीं मालूम है ? कि, चतुर्थ अविरत गुणस्थानमें हैं। फिर भी घुँघरू बांधकर क्यों नाचते हैं ? इतनी नम्रता आती है।

मुमुक्षु :- इन्द्रको तो भूतकालमें उनसे कोई उपकार हुआ हो ऐसा जरूरी नहीं।

पूज्य भाईश्री :- नहीं, ऐसा नहीं भी हो। ऐसा जरूरी नहीं है कि उपकार हुआ हो तो ही भक्ति हो, यह कोई जरूरी नहीं है। उसमें तो **`सांत दशा तिन्हकी पहिचानी, करै कर जोरी बनारसी वंदन।'** उनकी शांत दशा देखते हैं। बाल तीर्थंकरकी भी शांत दशा देखते हैं। भले ही पालनेमें सोते-सोते हाथ-पैर हिलाते हो, लेकिन उनकी (भी) शांत दशा देखते हैं। हाथ-पैर नहीं देखते। ये (इन्द्र) उन्हें वंदन करते हैं, उनकी पूजा करते हैं ! अष्ट द्रव्यसे उनकी पूजा करते हैं। जन्मकल्याणक मनाते हैं तब पूजा करते हैं, बादमें अभिषेक करते हैं, वह भी पूजाका अंग है। मेरु पर्वत पर ले जाकर अभिषेक करते हैं वह एक प्रकारकी पूजा ही है। अभिषेक है सो पूजाका अंग है। वंदन करते हैं वह पूजाका अंग है, स्तुति करते हैं वह पूजाका अंग है। वे सब पूजाके अवयव हैं। अभिषेक करनेके बाद सभी इन्द्र अष्ट द्रव्यसे पूजा करते हैं। (तो फिर वहाँ) सम्यग्दृष्टिको अर्घ चढ़ाया कि नहीं चढ़ाया ? उस वक्त सम्यग्दृष्टिको अर्घ चढ़ाया कि नहीं चढ़ाया ? आठों द्रव्यसे चढ़ाया। पूरी पूजा

की। सिर्फ अर्घ नहीं बोले वहाँ आठों द्रव्यसे पूरी पूजा की है।

छः ढालामें लिया है न ? वह दिगम्बरमें ही तो आती है न ! छः ढाला श्वेताम्बरमें कहाँ है ? **`लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं।`** वह कहाँसे आया ? वह बाल तीर्थंकरकी बात है। भगवानने अभी लेश संयम प्रगट नहीं किया (फिर भी) सुरनाथ अर्थात् इन्द्र उन्हें भजते हैं। कथानुयोगकी बात तो समझमें आनी चाहिए न ? द्रव्यानुयोगकी नहीं समझमें आये तब तो ठीक है। यह तो कथानुयोगकी बात है। चौबीसों तीर्थंकरके पाँचों कल्याणककी एक-सी ही परिस्थिति होती है। यह कथानुयोगकी विशेषता है, जैनदर्शनके चार अनुयोगमें कथानुयोगकी यह विशेषता है कि, चौबीस तीर्थंकरके पुराण लिखे जाते हैं, उसमें शायद ही किसी तीर्थंकरकी छद्मस्थदशाकी विशेषताकी कथा आती है। जैसे कि ये पार्श्वनाथ भगवानकी कुछएक (बातें) आयीं, वैसे ही महावीर भगवानकी थोड़ी (बातें) आयीं, कोई-कोई प्रसंग आये हैं। वरना प्रायः किसी प्रसंगकी कथा ही नहीं आती। गर्भकल्याणक, जन्म-कल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञानकल्याणक व मोक्षकल्याणक सबमें एक-सा ही वर्णन आता है। चौबीसों तीर्थंकरके महापुराण आप पढ़ेंगे (तो) आपको ऐसा ही लगेगा क्या महापुराण ऐसे लिखा है !! सबका एक सरीखा (वर्णन) आता है। क्योंकि पुण्य एक समान है, प्रसंग (सब) एक सरीखे मनाते हैं, क्योंकि वही के वही इन्द्र होते हैं। जो पहले तीर्थंकरके (प्रसंगमें) सौधर्म इन्द्र आते हैं वही, चौबीसवें तीर्थंकरके वक्त भी वही सौधर्म इन्द्र आते हैं। वे तो असंख्य तीर्थंकरके पंचकल्याणक मनाते हैं। उनका आयुष्य तो बहुत बड़ा होता है न !

(यहाँ क्या कहते हैं ?) परिणामकी अपेक्षासे यदि विचार किया जाये तो धर्मी जीवको अपने परिणाममें जो मुख्य परिणमन है वह शुद्ध परिणमन है, अशुद्ध परिणमन है वह गौण है, भले ही उस अशुद्ध परिणमनमें बुद्धिपूर्वक देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति-पूजाके परिणाम हो, परंतु वह गौण है। बहुत भक्ति करते हो तब किसीको ऐसा लगे कि, अभी तो परिणामकी मुख्यता हो गई होगी न ! ज्ञानी तो नाचने लगे !! (ज्ञानी) नाचते भी हैं। तो तब उन्हें मुख्यता हो गई होगी कि नहीं ? नहीं, तब परिणामकी मुख्यता नहीं हुई (किन्तु) अंदर जो शुद्ध परिणति है उसकी ही मुख्यता है। और उसका जो विषय त्रिकाली(स्वरूप) है उसीकी मुख्यता है।

मुमुक्षु :- शब्द कैसे इस्तेमाल किये हैं ! त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीको...!

पूज्य भाईश्री :- हाँ, धर्मी कैसे ? कि, त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मी (हैं)। विशेषण लगाया है। ये उनकी लिखनेकी शैली है। धर्मीकी वृत्ति अपेक्षासे बात करनी है, परंतु कैसे धर्मी ? कि, त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मी।

७. `त्रिकाली तो प्रवृत्ति-निवृत्तिरूप परिणामका ही कर्ता नहीं है।** एक समयके परिणामका कर्ता नहीं है, (परंतु) अपरिणामी है। त्रिकाली है वह तो अपरिणामी है। वह तो प्रवृत्तिका भी कर्ता नहीं हैं व निवृत्तिका भी कर्ता नहीं हैं। त्रिकाली स्वरूप तो प्रवृत्ति-निवृत्तिकी अपेक्षासे पर है। **`परिणामका कर्ता परिणाम ही है, यह अपेक्षा भी अपनी चर्चामें आई ही थी।`** अपनी चर्चामें तो यह बात आ ही चुकी है कि, परिणामका कर्ता परिणाम है। अतः पत्रमें यह बात दोहरायी है। कर्ता-कर्मकी चरमसीमाका पत्र आया न (आगे) ? (पत्रांक - २४) **`पर्याय ही पर्यायका कर्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आखा द्रव्य नहीं, यह `कर्ता-कर्मकी` चरमसीमा है।` यह बात आ गई है यहाँ भी वह बात आयी। चर्चामें भी यह बात चली थी।

यह प्रश्न उस वक्त कोई उतना चर्चास्पद नहीं था। परंतु सहज ही वह बात चलती थी कि, एक समयका परिणाम ही परिणामका कर्ता है। यह बात राजवार्तिकमेंसे मिली। पर्याय ही पर्यायका कर्ता। पर्यायका कारण-कार्य पर्यायमें ही है। ऐसा शीर्षक देकर उन्होंने लिया है। राजवार्तिकका (यह) एक ही आधार मिला है।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है कि - `सर्वभावसे विराम की प्राप्तिरूप संयम वह द्रव्यानुयोग परिणमित होनेका मूल है, यह किसी भी काल में भूलना नहीं। वहाँ कया तात्पर्य है' ?

समाधान :- जिसको द्रव्यानुयोग का यथार्थ परिणमन हो गया है उसे संयम अनुक्रम से आ ही जाता है। उसको स्वरूपरमणता होकर चारित्र प्रगट होता है। मुमुक्षुदशा में उसे अमुक प्रकार से बाह्य रुचि छूट जाती है, वैराग्य आ जाता है। (**स्वानुभूतिदर्शन-२५१**)

❖

प्रश्न :- अर्पणता किसे कहते हैं ?

समाधान :- अर्पणता में सब आग्रह छूट जाने चाहिये। आग्रहोंकी पकड़ ढीली हो जाय तब अर्पणता हो। अर्पणता में सब आग्रह कि - मैं कुछ जानता हूँ वह सब छूट जाना चाहिये। किसी प्रकार की पकड़ नहीं रहनी चाहिये।

(**स्वानुभूतिदर्शन-२५२**)

❖

प्रश्न :- निर्णय तो करते हैं, किन्तु कभी-कभी वह निर्णय छूट जाता है उसका क्या कारण है ?

समाधान :- रुचि नहीं हो तो निर्ण होकर छूट जाता है। रुचि प्रबल हो तो निर्णय ज्यों का त्यों रखे और उसका निर्णय आगे बढ़कर कार्य करे कि यह मैं हूँ, यह मैं नहीं। इसप्रकार रुचि हो तो उसका निर्णय दृढ़तापूर्वक कार्य किया करे। ऐसा उसे प्रथम अभ्यासरूप होता है। वह अभी यथार्थ नहीं है, परन्तु उसका अभ्यास करते-करते यथार्थ होनेका अवकाश है।

(**स्वानुभूतिदर्शन-२५३**)

❖

प्रश्न :- शास्त्रीय ज्ञानका विकास हो उसे क्या मंथन नहीं कहते ?

समाधान :- नहीं, वह मंथन नहीं है। मूल तत्त्वका मंथन-चैतन्यका मंथन, वह आंतरिक मंथन है; फिर उस मंथन में ज्यादा टिक न सके तो शास्त्र के विचार आयें वह बात अलग है। प्रयोजनभूत तत्त्व के विचार आयें कि मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं ? मैं सबसे न्याया हूँ तो कैसे न्यारा होऊँ ? अंतर में यह भेदज्ञान कैसे प्रगट हो ? आदि विचार आते हैं।

जैसे भगवान और गुरु के आँगन में टहेल (चक्कर) मारे उसी प्रकार ज्ञायक को ग्रहण करने के लिये चक्कर मारा करे, उसका बारम्बार अभ्यास करता रहे। भगवान के दर्शन हेतु उनके द्वार पर टहेल मारता हो, गुरु के दर्शन हेतु उनके आँगन में टहेल मारता हो, और ज्यों ही भगवान के द्वार खुलें और भगवान के दर्शन हों, गुरुके दर्शन हों; उसी प्रकार चैतन्य के प्रांगण में टहेल मारा करे, कि-चैतन्य के दर्शन कैसे हों। मेरे चैतन्यका स्वभाव क्या ? उसकी महिमा क्या ? इस प्रकार यदि निरन्तर टहेल मारे और अभ्यास करे तो चैतन्यके द्वार खुल जाएँ और दर्शन हों।

यदि भगवान के द्वारसे हट, थक जाय तो दर्शन न हों। वैसे ही यहाँ अंतर से थकना नहीं, निराश न होना। गुरु की महिमा लगे तो गुरु के आँगन में टहेल मारते रहनेपर उनके दर्शन हों; वैसे ही चैतन्य के प्रांगण में बारम्बार टहेल मारा करे, चैतन्य का विचार-अभ्यास किया करे और उसीका रटन करते रहना चाहिये।

चैतन्यका ग्रहण नहीं होता इसलिये उसका रटन छोड़ना नहीं चाहिये। अंतरमें जो संस्कार

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-१४ पर)

३२९

बंबई, माघ वदी, १९४८

कोई क्षणभरके लिये अरुचिकर करना नहीं चाहता। तथापि उसे करना पड़ता है, यह यों सूचित करता है कि पूर्वकर्मका निबंधन अवश्य है।

अविकल्प समाधिका ध्यान क्षणभरके लिये भी नहीं मिटता। तथापि अनेक वर्षोंसे विकल्परूप उपाधिकी आराधना करते जाते हैं।

जब तक संसार है तब तक किसी प्रकारकी उपाधि होना तो संभव है; तथापि अविकल्प समाधिमें स्थित ज्ञानीको तो वह उपाधि भी अबाध है, अर्थात् समाधि ही है।

इस देह को धारण करके यद्यपि कोई महान ऐश्वर्य नहीं भोगा, शब्दादि विषयोंका पूरा वैभव प्राप्त नहीं हुआ, किसी विशेष राज्याधिकार सहित दिन नहीं बिताये, अपने माने जानेवाले किसी धाम व आरामका सेवन नहीं किया, और अभी युवावस्था का पहला भाग चलता है, तथापि इनमेंसे किसी की आत्मभावसे हमें कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, यह एक बड़ा आश्चर्य मानकर प्रवृत्ति करते हैं। और इन पदार्थोंकी प्राप्ति-अप्राप्ति दोनों एकसी जानकर बहुत प्रकारसे अविकल्प समाधिका ही अनुभव करते हैं। ऐसा होनेपर भी वारंवार वनवासकी याद आती है, किसी प्रकारका लोकपरिचय रुचिकर नहीं लगता। सत्संगमें सुरत बहा करती है, और अव्यवस्थि दशासे उपाधियोगमें रहते हैं। एक अविकल्प समाधिके सिवाय सचमुच कोई दूसरा स्मरण नहीं रहता, चिंतन नहीं रहता, रुचि नहीं रहती, अथवा कुछ काम नहीं किया जाता।

ज्योतिष आदि विद्या या अणिमा आदि सिद्धिको मायिक पदार्थ समझकर आत्माको उसका स्मरण भी क्वचित् ही होता है। उस द्वारा किसी बातको जानना अथवा सिद्ध करना कभी योग्य नहीं लगता, और इस बातमें किसी तरह अभी तो चित्तप्रवेश भी नहीं रहा।

पूर्व निबन्धन जिस जिस प्रकारसे उदयमें आये उस उस प्रकार से... अनुक्रमसे वेदन करते जाना, ऐसा करना योग्य लगा है।

आप भी ऐसे अनुक्रम में चाहे जितने थोड़े अंशमें प्रवृत्ति की जाय तो भी वैसी प्रवृत्ति करने का अभ्यास रखिये और किसी भी कामके प्रसंगमें अधिक शोकमें पड़नेका अभ्यास कम कीजिये; ऐसा करना या होना यह ज्ञानीकी अवस्थामें प्रवेश करनेका द्वार है।

आप किसी भी प्रकारका उपाधिप्रसंग लिखते हैं, वह यद्यपि पढ़नेमें आता है, तथापि तत्संबंधी चित्तमें कुछ भी आभास न पड़नेसे प्रायः उत्तर लिखना भी नहीं बन पाता, इसे दोष कहें या गुण कहें, परंतु क्षमा करने योग्य है।

सांसारिक उपाधि हमें भी कुछ कम नहीं है, तथापि उसमें निज भाव न रहनेसे उससे घबराहट उत्पन्न नहीं होती। उस उपाधि के उदयकालके कारण अभी तो समाधि गौणभाव से रहती है, और उसके लिये शोक रहा करता है।

लि. वीतरागभावके यथायोग्य।

मोक्षमार्ग रहस्य प्रकाशक निष्कारण करुणामूर्ति
मुमुक्षुजीवों के परम हितस्वी जिनवाणी मर्मज्ञ
पूज्य भाईश्री शशीभाई के
७९वीं जन्मजयंति महोत्सव प्रसंग पर
कोटी कोटी वंदन !!

निश्चय रत्नत्रय प्राप्त, परमागम-सुधा के रहस्यज्ञ, जिनमार्ग प्रति अखंड निष्ठावान, जिनकी निष्कारण करुणा का नित्य स्तवन करने में भी आत्मस्वभाव प्रगट होता है, मोहस्वयंभूरमण समुद्र को भूजा से तीर गये ऐसे हे प्रखर पुरुषार्थ के स्वामि ! भाव अप्रतिबद्धरूप से विचरनेवाले, आपके प्रति अचल प्रेम और सम्यक् प्रतीति हो, इस भावना सहित आपके चरणों में भक्ति-पुष्प अर्पण करते हैं !

- स्वानुभूतिप्रकाश परिवार